जैनदर्शन और योगसाधना

☐ कमला माताजी, इन्दौर

इन दोनों में दुग्ध और जल जैसा संयोग कह लें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। जैनदर्शन में योगसाधना पर इतना बल क्यों दिया जाता है ? सत्य है, आत्मा के साथ तीनों योगों का मिश्रण जल के समान है। जब तक योगों का निरुंधन नहीं होगा तब तक आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को न पा सकेगी।

वर्तमान में योगाभ्यास—विपश्यना आदि साधनाओं के लिए शिविर आदि का आयोजन किया जाता है। सभी साधकों का व मार्गदर्शकों का एक ही लक्ष्य है कि हम शान्ति को प्राप्त करें और इसलिए ध्यान आदि क्रियाएँ की जाती हैं, करवाई जाती हैं। कुछ समय के लिए काययोग अभ्यास के द्वारा स्थिर हो गया और उसके साथ ही वचन-योग तो स्थिर हो ही जाता है। लेकिन मनोयोग को रोकना इतना आसान नहीं है। इसकी गति बहुत तीव्र होती है। यह सहज में वश में नहीं किया जाता। उत्तराध्ययनसूत्र के २३ वें अध्ययन में केशीस्वामी श्रमण ने भ. गौतम से अपनी प्रश्नपृच्छा के दौरान यह प्रश्न भी रक्खा—

प्रश्न—मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
जंसि गोयम ! आरूढो, कहं तेण न हीरसि ॥५५॥

उत्तर—पधावन्तं निगिण्हामि, सुयरस्सीसमाहियं।
न मे गच्छइ उम्मग्गं, मग्गं च पडिवज्जई ॥५६॥

कितना सुन्दर प्रत्युत्तर। इधर-उधर दौड़ते हुए मन रूपी अश्व को सन्मार्ग पर लाने के लिए सतत सूत्र रूपी लगाम अपने हाथ में रक्खें। वह कैसे ? सुन्दर चिन्तन के द्वारा—

एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसण संजुओ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा ॥

एक शाश्वत आत्मा ही मेरा है जो ज्ञान-दर्शनमय है। आत्मा के सिवाय सभी भाव-पदार्थ मुझसे अलग हैं। संयोग से यह मेरे साथ जुड़ गए हैं—वस्तुतः मेरा इनसे कुछ सम्बन्ध नहीं है।

हमारी जिह्वा पर ही न थिरकते रहें ये शब्द। इन्हें अन्तर में उतारने का प्रयत्न बराबर चालू रहे। इन भावों के द्वारा सचित्त-अचित्त परिग्रह के स्वरूप को समझें, जिन्हें अपना मानकर चलने का अभ्यास हमें अनादि काल से है। शुद्ध समझ न होने के कारण अनित्य में ही नित्यता का आभास हो रहा है। कभी सोचा नहीं ! चिन्तन किया नहीं। सही समझ के अभाव में इधर-उधर सुख प्राप्ति के लिए दौड़ते रहे। हमें एक नज़र इधर भी डालनी है। जब शिविरों में प्रवेश किया जाता है, तब साधक के साथ अल्प परिग्रह रहता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है और साधना काल में पारिवारिक जीवन से भी पृथक् रहता है। सांसारिक क्रियाओं से लगभग दूरी हो जाती है। मेरी तेरी जेवरी का बन्धन भी ढीला हो जाता है। भले ग्रामानुग्राम से आये हुए भाई बहनों से घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता है शिवरार्थी परिवार के रूप में, लेकिन अन्तर में वह मानता है कि यह मेरा नहीं है। इसलिए उसे साधनाकाल में शांति अनुभव होता है। लेकिन घर लौटने पर पुनः राग-द्वेष, आर्त्त-रौद्र ध्यान उसे घेरे रहते हैं। जितने २ अंशों में सचित्त-अचित्त उपाधियों से ममत्व हटाने का प्रयत्न किया जायेगा, उतने २ अंशों में शांति प्राप्त होती जायेगी। इसीलिए जैनदर्शन में महाव्रतों एवं अणुव्रतों का प्रावधान है। यह सब बाह्य उपाधियों से मुक्त होना है, लेकिन आभ्यन्तर उपाधियों से छुटकारा पाने के लिए सतत अभ्यास की आवश्यकता है। सतत जागरूक रहने की आवश्यकता है। भ. महावीर ने साढ़े बारह वर्ष तक ध्यानमग्न रहकर चिन्तन किया और आभ्यन्तर उपाधि से छुटकारा पाकर के सर्वज्ञता प्राप्त की। शास्त्रों में साधना का जहाँ वर्णन आता है, वहाँ प्रथम प्रहर में स्वाध्याय और दूसरे प्रहर में ध्यान का विधान है। इसका यही आशय है कि ज्ञानरूपी सूत्र का आलम्बन लेकर ध्यान के द्वारा अशुद्ध भावों को रोकें। अशुभ से शुभ में प्रवेश कर शुद्धता की ओर बढ़ें।

महापुरुषों ने जिस मार्ग का अनुसरण कर सिद्धि प्राप्त की, वही मार्ग भव्य प्राणियों के लिए कहा गया है। अशुभ मनोयोग कर्मबन्धन में अपनी पूरी २ भूमिका निभाता है तो शुभ मनोयोग अगर उत्तरोत्तर शुद्धता की ओर बढ़ता जाये तो अन्तर्मुहूर्त में पूर्णता को प्राप्त करवा देता है। वचनयोग, काययोग तो इसीके इशारे पर चलते रहते हैं, केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर लेने के बाद भी सयोगीकेवली ही कहे जाते हैं। वहाँ पर भी चार अघातिक कर्म से बद्ध रहती है आत्मा। यह है योगों का साम्राज्य! जब योगों का निरुंधन सम्पूर्ण रूप से हो जाता है तो क्षणिक समय में सिद्धत्व प्राप्त कर लेती है आत्मा। अतएव सतत जागरूक रहते हुए शुभाशुभ योगों पर दृष्टि रखने का प्रयास चालू रखना चाहिए। जलरूपी योगों से मुक्त होकर दुग्ध रूपी शुद्ध आत्मत्व को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त होगी तभी आधि, व्याधि, उपाधि से छुटकारा होगा। अतएव जैनदर्शन में योगसाधना का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

□□

आसमस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org